International Journal of Education, Modern Management, Applied Science & Social Science (IJEMMASSS)
ISSN : 2581-9925, Impact Factor: 6.340, Volume 03, No. 02(III), April - June, 2021, pp.213-220

भारत में शिक्षा का ऐतिहासिक स्वरुपः एक विश्लेषण

डॉ. कमलेश कुमार सारसर*

प्रस्तावना

भारतीय समाज में प्राचीनकाल से शिक्षा का स्वरुप अत्यन्त ज्ञानपरक, सुव्यवस्थित और सुनियोजित था, जिससें व्यक्ति के लौकिक और पारलौकिक जीवन के लिए विभिन्न प्रकार की शिक्षा प्रदान की जाती थी। मनुष्य और समाज का आध्यात्मिक और बौद्धिक विकास शिक्षा के ही माध्यम से सम्भव माना जाता है।शास्त्र और विवेक से शिक्षा सम्पन्न होती है। शिक्षा से मनुष्य में ज्ञान का उदय होता है। इसलिए ज्ञानोनुभव का आधार तत्व शास्त्र और विवेक माना गया है। भारतीय परम्परा के अनुसार 'ज्ञान अथवा विद्या से मुक्ति प्राप्त होती है तथा मनुष्य शिल्प में निपुणता प्राप्त करता है।'[1] इस तरह ज्ञान के आलोक से मनुष्य का जीवन आलोकित होता है, क्यो कि किसी भी कार्य को करने वाले दो प्रकार के व्यक्ति होते है, एक तो वे जो उसको समझ अथवा ज्ञान से करते है। दूसरे वे जो बिना समझ अथवा अज्ञान से करते है। किन्तु विद्या और अविद्या दोनो एक दूसरे से भिन्न है। विद्या और मनोयोग से व्यक्ति कर्म करता वही अधिक शक्तिशाली होता है।[2] वस्तुतः ज्ञान अथवा विद्या से व्यक्ति का कर्म और आचरण परिष्कृत और दिव्य हो जाता है और वह ज्ञान–सम्पन्न होकर दैवतुल्य हो जाता है। वैदिक काल में ऐसे ज्ञानी व्यक्ति को सर्वोच्च सम्मान प्राप्त था। ऋषि परम्परा के अनुसार जब व्यक्ति विद्या और ज्ञान से सम्पन्न हो जाता था तब ऋषि ऋण से मुक्त हो जाता था। मनुष्य के जीवन में विद्या अथवा ज्ञान का विशिष्ट स्थान है। विद्या के बिना मनुष्य का जीवन पशुतुल्य है। अत : अज्ञानी मनुष्य का जीवन अन्धकारमय है।[3] छांदोग्य उपनिषद में कहा गया है कि अक्षर को जानने और न जानने वालो, दोनो कर्म करते है।किन्तु विद्या और अविद्या, दोनो भिन्न–भिन्न (फल देने वाली)है। जो कर्म विद्या, श्रद्धा और योग से संयुक्त होकर किया जाता है, वही प्रबलत्तर होता है।[4] अतः ज्ञान से ही उसका जीवन आलोकित होता है।ज्ञान मनुष्य का तीसरा नेत्र है, जो उसे समस्त तत्वों के मूल को समझने में समर्थ करता था तथा उसे सही कार्यो की और प्रवृत करता है।[5] शिक्षा से मनुष्य का जीवन समृद्ध और उन्नत होता है उसकी बुद्धि और प्रज्ञा सुदृढ होती है। विद्या से मनुष्य अपना जीवन सार्थक करता है। इसके बिना उसका जीवन निरर्थक और सारहीन रहता है। भारत की प्राचीन शिक्षा आध्यात्मिमकता पर आधारित थी। शिक्षा, मुक्ति एवं आत्मबोध के साधन के रुप में थी। यह व्यक्ति के लिये नहीं बल्कि धर्म के लिये थी भारत की शैक्षिक एवं सांस्कृतिक परम्परा विश्व इतिहास में प्राचीनतम है। विभिन्न विद्वानों ने शिक्षा को प्रकाशस्त्रोत, अन्तर्दृष्टि, अन्तर्ज्योति, ज्ञानचक्षु और तीसरा नेत्र आदि उपमाओं से विभूषित किया गया है। प्राचीन काल में इस बात पर बल दिया गया था कि शिक्षा व्यक्ति को जीवन का यथार्थ दर्शन कराती है तथा इस योग्य बनाती है कि वह भवसागर की बाधाओं को पार करके अंत में मोक्ष को प्राप्त कर सके जो कि मानव जीवन का चरम लक्ष्य है।

वैदिक कालीन शिक्षा का उद्देश्य

शिक्षा से मनुष्य का जीवन विशुद्ध, सम्पन्न, परिष्कृत और समुन्नत ही नही होता, बल्कि समाज भी सात्विक और नैतिक निदेर्शों का पालन करता हुआ सन्मार्ग पर चलकर विकसित होता है।मनुष्य का जीवन शिक्षा और ज्ञान से ही धर्मपथ ,नैतिक मूल्यों से युक्त, उच्च आदर्शो से संचालित और बहुमुखी व्यक्तित्व से युक्त होता

* सहआचार्य – इतिहास, स्व. राजेश पायलट राजकीय, स्नातकोत्तर महाविद्यालय, बांदीकुई, दौसा, राजस्थान।

है। विद्यार्जन से व्यक्ति आत्मनिर्भरता तो प्राप्त करता ही है, साथ ही परिवार और समाज के निर्माण में योगदान प्रदान करता है। मनुष्य की धार्मिक वृत्तियों का उत्थान, उसके चरित्र का उत्थान, उसके व्यक्तित्व का उत्थान, उसके सामाजिक उत्तरदायित्वों का निष्पादन और उसके सांस्कृतिक जीवन का उन्नयन शिक्षा के प्रधान उद्देश्य है। शिक्षा के माध्यम से मनुष्य अपने इन्ही उद्देश्यों की पूर्ति में लगा रहता है। अथर्ववेद में विद्या अथवा शिक्षा के उद्देश्य और उसके परिणाम का उल्लेख किया गया है, जिसमें श्रद्धा, मेधा, प्रज्ञा, धन, आयु और अमृतत्व को सन्निहित किया गया है।[6]

वैदिक साहित्य से ज्ञात होता है कि वैदिक काल में जीवन दो प्रकारो में विभक्त था – परा और अपरा। परा का अर्थ था कि ज्ञान, कर्म तथा उपासना के द्वारा ब्रह्म अर्थात् मोक्ष की प्राप्ति करना। जबकि अपरा का अर्थ था संगठित तथा नियोजित सामाजिक व्यवस्था का संचालन करना। स्पष्ट है कि परा के लिये अलौकिक विद्याओं का ज्ञान आवश्यक था तथा अपरा के लिये लौकिक विद्याओं का ज्ञान महत्वपूर्ण था। परा तथा अपरा में परा को अधिक श्रेष्ठ माना जाता था। सम्भवत : इन्ही कारणों से वैदिक युग मे शिक्षा का एकमात्र लक्ष्य छात्रों की शारिरिक, मानसिक तथा आध्यात्मिक शक्तियों का विकास इस तरह से करना था कि जिससे मोक्ष प्राप्ति के सर्वोच्च लक्ष्य की प्राप्ति की जा सके। सादा जीवन तथा उच्च विचारों के महावाक्य से निर्दिष्ट होने वाली वैदिक शिक्षा में विद्यार्थियों के सर्वागीण विकास पर बल दिया जाता था। वैदिक कालीन शिक्षा के प्रमुख उद्देश्य निम्नवत थे :

- **नैतिक चरित्र का निर्माण करना** – ऋग्वैदिक में शिक्षा का सर्वाधिक प्रमुख उद्देश्य छात्रों के नैतिक चरित्र का निर्माण करना था जिससे उनमें अच्छे संस्कारो का विकास हो सके। शिक्षा के द्वारा वैदिक आदर्शों के अनुरुप संस्कारों को छात्रों में विकसित किया जाता था ब्रह्मचर्य, सदाचार, परमार्थ, जनहित भावना, परोपकार, सात्विक भोजन गुरु व बडों का आदर, कर्तव्य पालन, सतस व्रत, धर्म के प्रतिनिष्ठा, श्रम के प्रति आदर, उद्य विचार आदि संस्कारों को विकसित करके छात्रों को संस्कार युक्त बनाया जाता था।

- **आध्यात्मिक विकास करना** – वैदिक युग में शिक्षा का दूसरा प्रमुख उद्देश्य मानव का आत्मिक विकास करना था उस समय मानव जीवन को धार्मिक भाव से ओत प्रोत परन्तु अत्याधिक सरल, स्वाभाविक तथा पवित्र बनाने का प्रयास किया जाता था जीवन का अन्तिम लक्ष्य मोक्ष की प्राप्ति था मनुष्य को ईश्वर में पूर्ण आस्था थी तथा धर्म के द्वारा सत्य तक पहुँचकर मोक्ष प्राप्त करने का प्रयास किया जाता था।

- **व्यक्तित्व का विकास** – वैदिक काल में छात्रों के सर्वागीण विकास पर बल दिया जाता था यही कारण है कि इस काल में शिक्षा का एक उद्देश्य छात्रों के व्यक्तित्व का विकास करना भी था शिक्षा के द्वारा छात्रों में आत्मविश्वास, सामाजिकता,नेतृत्व, आत्म अनुभूति, आत्मसम्मान, सहनशीलता, परोपकार, जैसे विभिन्न व्यक्तित्व गुणों का विकास किया जाता था छात्रों को अपने कार्य में पूर्ण स्वतन्त्रता दी जाती थी जिससे वे उत्तरदायित्व को समझ सकें तथा स्वयं निर्णय लेने की क्षमता विकसित कर सके।

- **सामाजिक कुशलता की उन्नति** – जैसा कि उल्लेखित है कि वैदिक काल में जीवन दो प्रकार थें– परा और अपरा। जहां परा जीवन से तात्पर्य ब्रह्म ज्ञान पर बल देना था वहीं अपरा जीवन से तात्पर्य सामाजिक व्यवस्था के संगठन, नियोजन तथा संचालन से था इसी कारण से वेदिक युग में छात्रों में सामाजिक जीवन की भावना विकसित करके उन्हें स्वस्थ तथा सुयोग्य नागरिक बनाना भी शिक्षा का एक उद्देश्य था। छात्रों का अपनी शिक्षा पूर्ण करकें गृहस्थ आश्रम के कर्त्तव्यों का ज्ञान कराया जाता था जिससे वे अपने पारिवारिक व सामाजिक उत्तरदायित्वों को समझ सकें तथा समाज व राष्ट्र के उत्थान में सक्रिय रुप से भाग ले सकें। माता पिता व बुजुर्गों की सेवा गौ सेवा, अतिथि सत्कार, दीन दुखियों की सहायता आदि कार्यों में छात्रों को सिखायें जाते थे।

- **संस्कृति का संरक्षण तथा प्रसार –** शिक्षा का एक प्रमुख उद्देश्य सदैव ही सांस्कृतिक धरोहर को अक्षुण्ण बनायें रखना रहा है। वैदिककाल की शिक्षा व्यवस्था भी इसका अपवाद नही थी। शिक्षा के द्वारा राष्ट्रीय व सामाजिक संस्कृति का सरंक्षण तथा प्रसार करना, उस समय की शिक्षा व्यवस्था का एक अत्यन्त आवश्यक तथा महत्वपूर्ण कार्य था।छात्रों का संस्कृति का विशद ज्ञान प्राप्त करकें सांस्कृतिक विरासत को एक पीढी से दूसरी पीढी तक हस्तान्तरित करने का यह प्रयास किया जाता था।

- **जीवीकोउपार्जन के लिये तैयार करना –** जीवीका के लिए तैयार करना भी सदैव से शिक्षा संस्थाओं का कार्य माना जाता रहा है। वैदिककाल मे भी छात्रों को इस तरह का व्यवहारिक ज्ञान प्रदान किया जाता था कि वे अपने भावी जीवन को सुचारु रुप से चलानें में समर्थ सिद्ध हो सकें। जीवनोपयोगी उद्यम जैसे पशुपालन, कृषि, डेरीफार्म, चिकित्सा, व्यवसाय, युद्धकला आदि का प्रशिक्षण दिया जाता था इन सबसे छात्रों की सामाजिक कुशलता में वृद्धि होती थी तथा वे गृहस्थ आश्रम के दौरान अपने परिवारजनों का भरण पोषण करनें में सक्षम सिद्ध होते थे।

स्पष्ट है कि वैदिककाल में शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य मनुष्य का सर्वागीण विकास करकें उसें परिपूर्ण बनाना था। आत्म ज्ञान तथा ब्रह्य ज्ञान का बोध कराकर छात्रों को तत्कालीन जीवनदर्शन के सर्वोत्कृष्ट लक्ष्य मोक्ष की प्राप्ति के लिये तैयार किया जाता था।

विद्या अध्ययन का प्रथम विषय : वेद

प्राचीनकाल में छात्रों को वेदो के अतिरिक्त अनेक विषयों की शिक्षा दी जाती थी विद्या के अध्ययन में पहल तीन वेदों को समाविष्ट किया गया था और बाद में अथर्ववेद को जोडकर चार वेद (ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद) पूर्ण किये गये थे। वेदा के मंत्रों के अध्ययन में ऐतिहासिक काव्य,पौराणिक गाथाऐं और वीर काव्य समाविष्ट थे।[7] पाणिनी में दो प्रकार के विद्यार्थियों का संकेत किया है एक दण्ड मानव और दूसरे अन्तेवासी।[8] दण्डमानव द्वारा ज्ञान प्राप्त करने की प्रारंभिक स्थिति में रहता था तथा अन्तेवासी उसमे उत्कृष्ट कोटि में रहता था माणवक उपनयन संस्कार के पश्चात आचार्य के समीप आता था और अन्तेवासी मनसा, वाचा, कर्मणा आचार्य की समीप प्रारम्भ से रहता था कालान्तर में शिक्षा प्राप्त स्नातको की तीन श्रेणियां हो गयी 1. विद्याव्रत स्नातक अथवा उच्च स्नातक – इस वर्ग के छात्र वेद वर्णित नियमों और व्रतो का पालन करते थे। इनका समाज ऊॅचा और आदरयुक्त स्थान था, 2. विद्या स्नातक– ऐसे छात्र जो वेद कठस्थ करने के पश्चात व्रत करते थे और 3. व्रत स्नातक– ऐसे स्नातक जो बिना वेदो को कठस्थ किये व्रतों का पालन करते **थे।**[9] ईत्सिंग ने विद्यार्थियों के दो भेद किये है माणव और ब्रह्माचारी। माणव वे थे जो भविष्य में संघ में दीक्षा ले लेते थे और ब्रह्माचारी वे थे जो प्रवजित नही होना चाहते थे।[10] इस प्रकार विद्यार्थियों की कई श्रेणिया समाज मे थी जो विभिन्न विषयों का ज्ञान प्राप्त कर तथा नियमों का अनुपालन करके बौद्धिक और आध्यात्मिक उत्कर्ष में मनोनिवेशपूर्वक बने हुऐ थे। वस्तुतः सच्चा ब्रह्माचारी वही था जो समाहित होकर विधिपूर्वक आचरण करता तथा इस पृथ्वी पर गुरु की सेवा मे निरत रहता था ऐसा विद्यार्थी ही अत्यन्त दुर्लभ विद्याा प्राप्त करके सुलभ फल को प्राप्त करता था।[11]

चतुर्थ वर्ण (शुद्र) के लिए शिक्षा का निषेध

प्राचीन काल में शुद्रो को वैदिक शिक्षा तथा अन्य विषयों के ज्ञान से वंचित रखा गया था केवल द्विज वर्ण के लिए ही वेद तथा अन्य विषयों की शिक्षा की व्यवस्था की गई थी प्रायः सभी शस्त्रकारों ने शुद्रो की शिक्षा का निषेध किया है। उनके लिए समस्त संस्कार भी वर्जित थे।[12] वैदिक अध्ययन और यजन दोनो से वे पूर्णत वंचित थे। उन्हे अन्य वर्णो की तरह अध्ययन और यजन का अधिकार नही था। वेदो का अध्ययन करने के इच्छुक शूद्रों के लिए बडी कठोर व्यवस्था की गई थी। यहा तक के वेदो को सुनने वाले शूद्रों को भी बडा दण्ड दिया जाता था। गौतम ने यह व्यवस्था दी है कि वैदिक मंत्रों का उच्चारण करने वाले शूद्र की जिन्हा काट देनी चाहिए।[13] जैमिनी के अनुसार कोई भी शूद्र अग्निहोत्र और वैदिक यज्ञ नही कर सकता था।[14] शूद्रों के अध्ययन के विषय में कौटिल्य ने कुछ नही लिखा है। वस्तुतः शूद्र संस्कारहीन थे, इसलिए चतुराश्रमों की व्यवस्था उनके

लिए नही थी। स्वभावतः ब्रह्मचर्य उनके लिए निषिद्ध होने के कारण वे अध्ययन से वंचित थे। वेदाध्ययन और यजन उनके लिए पूर्णतः वर्जित था।[15] वेदाध्ययन के निमित्त कोई भी शूद्र कुलपति के आश्रम में नही प्रवेश कर सकता था।[16] मनु के अनुसार वह हवि, उपदेश, धर्म और व्रत के अनुपयुक्त था।[17] पूर्व मध्ययुगीन अनेक शास्त्रकारों ने शूद्र के वेद न पढने के का निर्देश दिया है। अलबीरुनी ने भी लिखा है कि उसे वेद पढने का कोई अधिकार नही था।[18] अपरार्क का भी यही मत है कि शूद्रो को वेदाध्ययन का कोई अधिकार नही था।[19] स्पष्ट है कि शूद्रों को न वेद पढने का अधिकार प्राप्त था और न यज्ञ करने का। ऐसी स्थिति में वे अत्यन्त निम्न श्रेणी में जा पहुॅचें।

वैदिककाल में शिक्षा पद्धति

प्राचीन काल में सभ्यता के उत्कर्ष के साथ –साथ लेखन उपकरण में भी परिवर्तन होते गये। वैदिक काल में मौखिक शिक्षा प्रदान की जाती रही। तदनन्तर लेखन उपकरण का उपयोग किया जाने लगा, जिसमें भोजपत्र, कमलपत्र, आदि प्रमुख थें।जिस पर मयूरपंख से लिखा जाता रहा। लेखनी के रुप में पंखों का उपयोग पहले से किया जाता था। कालान्तर में आकर प्रारंम्भिक शिक्षा में छात्र को लिखने के लिये काली पटिया और खडिया दी जाती थी। वह लम्बवत् पटिया (तख्ती) पर बॉऐ से दॉऐं खडिया से लिखने का अभ्यास करता था । अलबीरुनी लिखता है कि वे बालको के लिये विद्यालय में काली तख्ती प्रयोग में लाते थे और उस पर लम्बाई की ओर से, न कि चौडाई की, बाऐं से दाऐं सफेद वस्तु से लिखते थे।[20] आज भी भारतीय पाठशालाओं में, अनेकानेक नवीन लेखन–उपकरणों के बावजूद, कालिख पुती हुई काठ की पटटी पर खडिया (दुधिया) से लिखा जाता है। अलबरुनी ने जिस सफेद वस्तु का निर्देश किया है वह निश्चय ही दुधिया रही होगी। बच्चों को तख्ती की लम्बाई की ओर से बाऐं से दाऐं लिखने के लिए आज भी सभी पाठशालाओं में बताया जाता है। वैदिक युग में शिक्षा–प्राप्ति के लिए कोई विशेष भेदभाव नही था। उपनिषद्काल में भी शिक्षा प्रदान करने और शिक्षा प्राप्त करने में व्यक्ति के ऊँच–नीच का विचार नही किया जाता था। परवर्ती काल में जाति भेद की अनेक धारणाऐं व्याप्त हो गयी थी, वे वैदिक युग में नही थी। सही बात तो यह थी कि शिष्य की जाति का विचार न करके उसकी योग्यता, विनम्रता और ग्राह्यता का ध्यान रखकर उसका चुनाव किया जाता था। सर्वत्र शिष्य के गुणों और सत्कर्मों का ही मूल्यांकन होता था इस युग में ब्राहाम्ण जाति का विद्वान भी अध्यात्म विद्या के विशेष ज्ञान के प्राप्त्यर्थ निःसंकोच भाव से क्षत्रियों के समीप जाता था और उसका अन्तेवासी बनता था। इस युग में ऐसे भी अन्तेवासी थे जिसके विषय में यही ज्ञात नही था कि उनके पिता कौन थे और उनका क्या गौत्र था। उपनिषद् कालीन ऐसे अनेकानेक उदाहरण है, जो इस पक्ष पर महत्वपूर्ण प्रकाश डालते है कि जाति के आधार पर विद्या नही प्रदान की जाती थी। उपनिषदों से विदित होता है कि सत्यकाम जाबाल अपने समय का प्रसिद्ध विद्वान् और ज्ञानी था। उसके कुल में शिक्षा का कार्य नियमपूर्वक सम्पन्न होता था।[21] आचार्य ने उसे अपना शिष्य बनाने के पहले गौत्र के विषय में पूंछा तो उसने अपने को सत्यकाम जाबाल बताया। जाबाल उसकी मॉ का नाम था और सत्यकाम स्वयं उसका नाम। उसे अपनें पिता के बारे में ज्ञात नही था कि कौन उसका पिता था, क्योंकि यौवनावस्था में जब उसकी मॉ परिचारिणी (सेविका) के रुप में यत्र–तत्र काम कर रही थी, तब वह उत्पन्न हो गया था। उसकी मॉ भी यह नही जानती थी कि वह किस गौत्र का था और किससे उत्पन्न हुआ था। इसलियें उसनें सत्यकाम से कहा था कि वह अपने नाम के साथ उसका ही नाम जोड ले। आचार्य ने जब उसके विषय में इस तथ्य को जाना तो वह उसके इस सत्य वचन पर बहुत प्रसन्न हुआ और कहा कि जो अब्राहाम्ण है, ब्राहाम्ण–गुण–स्वभाव से रहित है, वह इस तरह नही कह सकता। होमार्थ समिधा ले आओं, मै तुम्हारा उपनयन संस्कार करके तुम्हें आचार्य–कुल–वासी बनाऊँगा। तुममें यह बहुत बडा गुण है कि तुम सत्य से विचलित नही हुए।[22] ऐसे अनेक विनम्र ब्राहाम्ण जिज्ञासु तत्कालीन समाज में थे जो विद्वान और ब्रह्मज्ञ क्षत्रियों से उपदेश ग्रहण करने मे नहीं हिचकिचाते थे। उस समय किसी प्रकार की जाति–पॉति की भावना अथवा मिथ्या जाति–अभिमान और भेद–भाव की प्रवृत्ति कहीं नहीं थी। वैदिक युग में आर्येतर अथवा शूद्रों को ज्ञान और विद्या की शिक्षा प्रदान की जाती थी ऐसे निम्न जाति के विद्वान् कभी – कभी वैदिक मंत्रो की रचना भी करते थे। उपनिषद्ों से विदित होता है कि वैरोचन नामक असुर नें बत्तीस वर्षो तक ब्रह्मचारी के रुप में आचार्य प्रजापति के सान्निध्य में रहकर विद्यालाभ किया था। यह सर्वज्ञात है कि शुक्राचार्य असुरो के गुरु थे। शूद्रों की शिक्षा पर प्रतिबंध सम्भवतः स्मृतियुग में लगा। सूत्रयुग में द्विजों (ब्राहाम्ण, क्षत्रिय

और वैश्य) के साथ शूद्रो का भी समावर्तन संस्कार होता था।, जो इस बात का प्रमाण था कि ततत् युग में शिक्षा समाप्ति के पश्चात् अन्य वर्णो के साथ शूद्रो का भी समावर्तन संस्कार आयोजित किया जाता था। जातको से विदित होता है कि अनेक शूद्र उच्च कोटि के विद्वान थे।

प्राचीनकालीन शिक्षा की वर्तमान शिक्षा प्रणाली में उपादेयता

आधुनिक शिक्षा प्रणाली यद्यपि वैदिक शिक्षा प्रणाली से पूर्णतः भिन्न दृष्टिगोचर होती है, फिर भी वर्तमान शिक्षा कों नियोजित करने व इसकी अनेकानेक समस्याओं का समाधान खोजने की प्रत्येंक चेष्टा में प्राचीनतम शिक्षा के मूलभूत आधारों पर ध्यान देना सार्थक सिद्ध हो सकता है। वैदिक शिक्षा के आदर्शों अर्थात् श्रद्धा, भक्ति, सेवा, आदर, आत्म अनुशासन, सादा जीवन उच्च विचार, ब्रह्मचर्य, नैतिक बल आदि का अनुसरण करके वर्तमान समाज की आवश्यकता के अनुरुप शिक्षा व्यवस्था की जा सकती है। पाश्चात्य सभ्यता व संस्कृति के अन्धानुकरण में हम अपने पुरातन आदर्शो को विस्तृत करते जा रहे है तथा शिक्षा हमारे जीवन से दूर हटती जा रही है। छात्र असन्तोष, अनुशासन हीनता, बेरोजगारी, निर्धनता, वर्ग संघर्ष, सामाजिक बुराईयां, राष्ट्रीय विघटन, भाषायी समस्यायें जैसी अनुत्तरित समस्यायें दिन प्रतिदिन विकराल रुप धारण करती जा रही है। प्राचीन शिक्षा प्रणाली के आदर्श तत्वों को वर्तमान शिक्षा में समावेश करके इन समस्याओं का समाधान संभव है। जीवन के वास्तविक मूल्यों, गुणों व आदर्शो का अनुसरण करके हमारे छात्रगण भारतवर्ष की समृद्धि तथा वैभव का पुनरोद्धार कर सकते है।

बौद्ध शिक्षा पद्धति

बौद्ध शिक्षण पद्धति का आरम्भ स्वयं महात्मा बुद्ध ने किया था, जिसमे सरल और सुबोध जनभाषा में जीवन के तत्वों की चर्चा थी। व्याख्यान और प्रश्नोत्तर के आधार पर विचारो का आख्यान किया गया था उन्होने धर्म के प्रचार में प्रासंगिक उपमा, दृष्टांत, उदाहरण,कथा आदि का समावेश किया था जिससे उसका तत्व श्रोताओ को सरलतापूर्वक बोधगम्य होता था। विचार विनिमय और तर्क को बौद्ध धर्म में प्रतिष्ठित किया गया बौद्ध शिक्षा पद्धति में सत्य, दार्शनिक तथ्य, तर्क और पर्यवेक्षण, मनन आदि पर अधिक बल दिया गया। बुद्ध के पश्चात समाज में बौद्ध शिक्षा का क्रमशः प्रसार होने लगा। बौद्ध मठों और विहारो के माध्यम से बौद्ध शिक्षा का प्रसार भारत के विभिन्न भागो मे हुआ था। प्रारम्भ में हिन्दू और बौद्ध शिक्षाओं के मूल में कोई विशेष अन्तर नही था किन्तु बाद में आकर दोनो शिक्षा प्रणालियों के आदर्श और पद्धति में बहुत कम साम्य रह गया। विनय और धर्म की शिक्षा उपासक को दी जाती थी जिसमें महात्मा बुद्ध के धर्म– सिद्धान्तों का नियोजन होता था। सुत्त, विनय और धम्म के शिक्षार्थी एक साथ रहते थे अथवा भिक्षु सुत्त का पाठ करते थे, विनय का विमर्श करते थे तथा धम्म का पर्यालोचन करते थे, जिससे उनके ज्ञान की वृद्धि होती थी। यही नही, बौद्ध विहारों के माध्यम से बुद्ध के वचन और शिक्षाऐं प्रचारित होती थी। बौद्ध संघ में भिक्षु को दीक्षा प्राप्त करने के लिए पब्बजा (प्रव्रज्या) और उपसम्बद्धा जैसे संस्कार भी आवश्यक माने गये। पब्बजा ग्रहण से ही उपासक का जीवन प्रारंम्भ होता था।[23] इसमें उसके अभिभावक की अनुमति आवश्यक होती थी।[24] प्राय 8 वर्ष के बाद किसी का भी पब्बजा संस्कार सम्पन्न किया जा सकता था। ऋषि–प्रव्रज्या के अंतर्गत बालक गृहीत किया जाता था जहां वह बौद्ध शिक्षा ग्रहण करता था। ऐसे बौद्ध ऋतु के अतिरिक्त सभी ऋतुओं में भ्रमण किया करते थे। ऐसे प्रव्रजित को करुणा हुए भी बौद्ध धर्म और शिक्षा का भी प्रचार–प्रसार हुआ। जब बौद्ध विद्वान दिङ्ग नाम ने नालन्दा मे जाकर यहां के विख्यात ब्रह्मण्म पंडित सुदुर्गम की शास्त्रार्थ में पराजित किया था। समय समय पर गुप्त राजाओं ने नालन्दा के विकास में सराहनीय योग प्रदान किया था जो उनकी धार्मिक सहिष्णुता और विचारों की व्यापकता का उज्जवल पक्ष है। सर्वप्रथम कुमार गुप्त (414–455 ई.) ने इस बौद्ध संघ को दान दिया था। उसके बाद बुद्धगुप्त, तथागतगुप्त, नरसिंहगुप्त बालादित्य आदि अनेक गुप्त राजाओं ने इसे अपना संरक्षण प्रदान कर इसके विकास में योगदान दिया था। श्वानच्वांग के विवरण से विदित होता है कि अनेकानेक बौद्ध विहारों का निर्माण यहां किया गया।[25] विहारों में कुछ तो काफी बडे और भव्य थें जिनके गगुनचुम्बी शिखर अत्यन्त आकर्षक थे।[26] यहां का सबसे बडा विहार 203 फीट लम्बा और 164 फीट चौडा था। इसके कक्ष 9 फीट से 12 फीट तक लम्बे थे। यशोवर्मा के एक अभिलेख से विदित होता है कि नालन्दा के विहारों की शिखर श्रेणिया गगनस्थ मेघो का चुम्बन करती थी इनमें अनेक जलाशय थे। जिनमें कमल तैरते थे। यहां कई विशालकाय भवन थे। जिनमें छोटे बडे अनेक कक्ष थे । उत्खनन से मिले अवशेष वहां की भव्यता प्रमाणित करते है। विश्वविद्यालय भवन में व्याख्यान के निमित 7 विशालकाय

कक्ष और 300 छोटे बडे कक्ष थे। विद्यार्थी छात्रावासों में रहते थे तथा प्रत्येक कोने पर कुपों का निर्माण किया गया था।[27]जिसकी पुष्टि उत्खनन में मिले साक्ष्य से होती है। नालन्दा विश्वविद्यालय के खर्चे के लिए 200 गांव दान में प्राप्त थे, जिनकी आय से यहां के भिक्षु कार्यकर्ताओं और भिक्षु अध्येताओं का पोषण होता था। वही नही, इन गावों के निवासी प्रतिदिन कई मन चावल और दूध यहां भेजा करते थे। विद्यार्थियों से किसी प्रकार का शुल्क नही लिया जाता था। उनके आवास और भोजन की व्यवस्था विश्वविद्यालय द्वारा निःशुल्क की जाती थी। इस शिक्षा संस्था में प्रवेश पाने के इच्छुक विद्यार्थीयों के लिए कडें नियम थे। ऐसे प्रवेशेच्छुक विद्यार्थी को सबसे पहले द्वारपाल से वाद विवाद करना पडता था। तथा उसकी शंकाओं का समाधान करना आवश्यक था। उसके प्रश्नों से 8–10 विद्यार्थी असफल भी हो जाया करते थे। और एक–दों सफल।[28] अपने–अपने विषय के यहां अनेक विद्वान् थे।[29] ईत्सिंग के समय में यहां के विद्यार्थीयों की संख्या 3.000 थी किंतू हेनसांग के समय बढकर 10000 हो गयी।[30] यहां के शिक्षको की संख्या 1510 थी जिनमें एक हजार इस सूत्र निकायो में दक्ष थे और शेष पांच सौ अन्य विषयों में। हेनसांग के समय इस विश्वविद्यालय का प्रधान कुलपति शीलभद्र था[31]जो अनेकानेक विषय में पारंगत था। उससे पहले धर्मपाल इस विश्वविद्यालय का कुलपति था स्वानच्वांग भी यहा के प्रधान शिक्षको में से था जिसने अनेकानेक विषयों पर अधिकार प्राप्त किया था। यहां विभिन्न विषयों की शिक्षा दी जाती थी। सुदुर प्रदेशों और विदेशों से विद्यार्थी यहां आकर शिक्षा प्राप्त करते थे। चीन, तिब्बत,कोरिया, तुसार आदि अनेक देशों के विदेशी शिक्षार्थी यहां रहकर ज्ञान प्राप्त करते थे।[32] तथा अपनी रुचि के अनुसार विभिन्न विषयों की शिक्षा ग्रहण करते थे। विद्यार्थी के अध्ययन के लिए यहां धर्मयज्ञ नामक विशालकाय पुस्तकालय था। ईत्सिंग ने स्वयं 400 संस्कृत पुस्तकों की प्रतिलिपियां तैयार की थी जिनमें लगभग 5 लाख श्लोक थे। रत्नसागर, रत्नोदधि और रत्नरजंक नामक तीन भवनो से मिलकर भव्य पुस्तकालय का निर्माण हुआ था। जिनमें जिज्ञासु और अध्ययनशील विद्यार्थियों को प्रायः भीड रहा करती थी।[33] यहां का एक अध्यापक 9 या 10 विद्यार्थियो को पढाता था। इस विश्वविद्यालय के अध्यापन कक्ष बहुधा बडे बडे थे। इनमें 8 विशाल व्याख्यान भवन थे और 300 छोटे व्याख्यान कक्ष। सभी विषयों में मिलाकर नित्य लगभग 100 व्याख्यानों की आयोजना की जाती थी। नालन्दा में विशेषकर महायान शाखा का अध्ययन किया कराया जाता था। यहां के अनेक विहार भी महायानी शाला के थे। पालि भाषा की शिक्षा अनिवार्य रुप से प्रदान की जाती थी। नागार्जुन ,वसुवंधु, धर्मकीर्ति आदि ऐसे ही महायानी विचारक थे जिन्होने इसी शिक्षा केन्द्र में अपने को उन्नत किया था। स्वानच्वांग ने अनेक ऐसे विद्वान आचार्यो का उल्लेख किया है, जो अपने–अपने विषय के प्रकांड पंडित थे तथा भारत के विभिन्न प्रदेशो से आकर यहॉ अध्ययन–अध्यापन करते थे। धर्मपाल, चन्द्रपाल, गुणमति, स्थिरमति, प्रभामित्र, जिनमित्र, आर्यदेव, दिड्नाग, ज्ञानचन्द्र आदि ऐसे ही प्रतिभावान विद्वान थे जिनके आकर्षण से दूरस्थ विद्यार्थी भी ज्ञानार्जन के निमित्त आते थे। उदाहरण के लिए, ऐसे विद्वानों के नाम लिए जा सकते है, जो विभिन्न प्रदेशों के थे। आर्यदेव और दिड्नाग दक्षिण भारत के थे। धर्मपाल काच्चों का रहनेवाला था। शीलभद्र समतट (बंगाल) का निवासी था। गुणमति और स्थिरमति वलभी के रहने वाले थे। भारत में मुस्लिम राज्य की स्थापना होते ही इस्लामी शिक्षा का प्रसार होने लगा। फारसी जानने वाली ही सरकारी कार्य के योग्य समझे जाने लगे। हिंदू अरबी और फारसी पढने लगे। बादशाहो और अन्य शासकों की व्यक्तिगत रुचि के अनुसार इस्लामी आधार पर शिक्षा दी जाने लगी।इस्लाम के संरक्षण और प्रचार के लिए मस्जिदें बनती गई, साथ ही मकतबों, मदरसों और पुस्तकालयों की स्थापना होने लगी। मकतब प्रांरभिक शिक्षा के केन्द्र होते थे और मदरसे उच्च शिक्षा के। मकतबों की शिक्षा धार्मिक होती थी। विद्यार्थी कुरान के कुछ अंशों का कंठस्थ करते थे। वे पढना, लिखना, गणित, अर्जीनवीसी और चिटठीपत्री भी सीखते थे। इनमें हिंदू बालक भी पढते थे। मकतबों में शिक्षा प्राप्त कर विद्यार्थी मदरसो में प्रविष्ट होते थे। यहॉ प्रधानता धार्मिक शिक्षा दी जाती थी। साथ साथ इतिहास, साहित्य, व्याकरण, तर्कशास्त्र, गणित, कानून इत्यादि की पढाई होती थी। सरकार शिक्षको को नियुक्त करती थी। कहीं कहीं प्रभावशाली व्यक्तियों के द्वारा भी उनकी नियुक्ति होती थी। अध्यापन फारसी के माध्यम से होता था। अरबी मुसलमानों के लिए अनिवार्य पाठय विषय था। छात्रावास का प्रबंध किसी किसी मदरसे में होता था। दरिद्र विद्यालियों को छात्रवृत्ति मिलती थी। अनाथालयों का संचालन होता था। शिक्षा निःशुल्क थी। हस्तलिखित पुस्तकें पढी और पढाई जाती थी।राजकुमारों के लिए महलो के भीतर शिक्षा पर प्रबंध था। राज्यव्यवस्था,सैनिक संगठन,साहित्य, इतिहास, व्याकरण, कानून आदि ज्ञान गृहशिक्षक से प्राप्त होता था।

आधुनिक भारत मे शिक्षा का विकास

भारत में ब्रिटिश राज्य की स्थापना के समय तक शिक्षा का विकास स्थिर हो गया था। आरंभ में कंपनी ने शिक्षा के क्षेत्र में कोई प्रयास नही किया और ना ही इस संदर्भ में किसी प्रकार की जिम्मेदारी ली। किंतु भारत में शासित की गयी परंपराए संस्कृति एवं अपनी आवश्यकताओं के चलते ईस्ट इंडिया कंपनी ने भारतीयो की शिक्षा की ओर रुचि लेने का निर्णय लिया। सर्वप्रथम गवर्नर जनरल वारेन हेस्टिंग्स ने 1781 में कोलकाता में एक मदरसा स्थापित किया इसमें अरबी फारसी आदि भाषाओं का अध्ययन किया जाता था। यह ब्रिटिश काल का प्राचीनतम शिक्षा केंन्द्र रहा। 1791 में बनारस स्थित अंग्रेजी रेजिडेंट जोनाथन डंकन ने बनारस में एक संस्कृत कॉलेज की स्थापना की इस कॉलेज में संस्कृत वैदिक साहित्य का अध्ययन किया जाता था। 1784 में विलियम जॉन्स व कुछ अन्य विद्वानो ने मिलकर प्राची विषयों का अध्ययन करने के लिये एशियाटिक सोसायटी की स्थापना की। सोसाइटी से संबधित विद्वानो ने वेदो महाभारत अभिज्ञान शकुंतलम जैसे महान भारतीय ग्रंथों का यूरोपीय भाषा में अध्ययन कियां सर्वप्रथम आधुनिक भारत में इन्ही विद्वानों ने यूरोपीय को भारतीय संस्कृति का ज्ञान कराया। इन विद्वानों द्वारा प्रतिपादित ज्ञान भारत विद्याा अथवा इंडोलॉजी कहलाता है। 1798 मे वेलेजली बंगाल का गवर्नर जलना बना वह एक साम्राज्यवादी प्रशासक था वह भारत में ब्रिटिश आधिपत्य को स्थानीय बनाना चाहता था उसने सुदूर प्रशासनिक व्यवस्था स्थापित करने के लिए 1799 में ईस्ट इंडिया कंपनी की प्रशासनिक एवं अन्य अधिकारियों को प्रशिक्षण देने के लिए फोर्ट विलियम कॉलेज की स्थापना की। इस कॉलेज के प्रधानाचार्य गिलक्रिस्ट बनाए गए। इस कॉलेज में भारतीय पुस्तक के ज्ञान उपलब्ध कराने में लेखक लल्लू लाल इंशा अल्लाह खान सदा सुख लाल सदल मिश्र आदि का अविस्मरणीय योगदान रहा। किंतु 1802 में कुछ कारणो से कंपनी ने डायरेक्टर के इसे बंद कर दिया।1813 के एक्ट में पहली बार आधुनिक भारत के शिक्षा के इतिहास में कंपनी सरकार ने भारत में शिक्षा एवं ज्ञान के प्रसार के लिए एक लाख रुपए का प्रावधान किया। 1817 में पहली बार कोलकाता में पाश्चात्य प्रणाली के आधार पर राजा राम मोहनराय के एवं डेविड हेयर के प्रयासो से हिंदू कॉलेज की स्थापना हुई। इस कॉलेज में पाश्चात्य ज्ञान विज्ञान मानविकी आदि की शिक्षा अंग्रेजी माध्यम में दी जाती थी। इसी प्रकार कंपनी ने संस्कृत को प्रस्थान देने के लिए कोलकाता दिल्ली एवं आगरा में एक संस्कृत कॉलेज की स्थापना की। 1828 ने लॉर्ड विलियम बैटिक गवर्नर जनरल बनकर भारत भारत आया।उनका शिक्षा संबधी दृष्टिकोण प्रगतिशील था उसने शिक्षा के संबध में एक समिति का गठन किया। मैकाले को भारत में शिक्षा संबधी दृष्टिकोण आंग्ल वादी था। उसने आंग्ल वादी सिद्धांत के आधार पर भारत में शिक्षा व्यवस्था के लिए एक कार्यक्रम निर्धारित किया। लॉर्ड विलियम बेंटिक ने 7 मार्च 1835 को मैकाले के कार्यक्रम का स्वीकार कर लिया। मैकाले के कार्यक्रम के उद्देश्य निम्न थे। 1.भारत में अंग्रेजी शिक्षा साहित्य एवं यूरोपीय ज्ञान का प्रसार किया जाना चाहिए। 2. शिक्षा के मदद के लिए रखा गया धन का अधिकांश भाग अंग्रेजी शिक्षा पर ही व्यय किया जाए। 3. भारतीय शिक्षा से संबधित विद्यालयों को समाप्त न किया जाए किंतु इन विद्यालयों मे पढने वाले विद्यार्थियों का वह सरकार द्वारा मै उठाया जाए। 4. सरकार का धन प्रचवादियों की पुस्तको की प्रिटिंग में वह नहीं किया जाए। 5. इस प्रणाली के अंतर्गत अधोमुखी निस्यंदन सिद्धांत स्वीकार कियागया। मार्च 1835 को विलियम बेंटिक में अंग्रेजी को भारत की राजकीय भाषा घोषित कर दिया। मैकाले की व्यवस्था के आधार पर भारत में शिक्षा का विकास होने लगा।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. विष्णु पु. , 6.5.61, आगमोत्थं विवेकाच्च द्विधा ज्ञानं तदुच्यते। ;
   वही, 1.19.41, सा विद्या या विमुक्तये । विद्यान्या शिल्पनपुण्यम् ।
2. छा. उ. 1.1.10, ‘‘‘‘उभौ कुरुतौ यश्चैतदेवं वेदयश्च न वेद।
   ननना तु विद्या चाविद्या च । यदेव विद्यया
   करोति श्रद्धयोपनिष्दा तदेव वीर्यवत्तरं भवति ।।
3. विष्णु पु., 6.5.62, अंध तम इवाज्ञानम्।
4. छां. उ. , 1.1.10, तेनोभौ कुरुतौ यश्चैतदेव वेद यश्च न वेदं । नाना तु विद्या चाविद्या च यदेव विद्यया करोति श्रद्धयोपनिषदा तदेव वीर्यवत्तरं भवतीति खल्वेतस्यैवाक्षरस्योपव्याख्यानं भवति।

5. सु.र.सं., पृ. 194, ज्ञानं तृतीय मनुजस्य नेत्रं समस्तत्वार्थविलोकिदक्षम्।
तेजोडनपेक्षं विगतान्तरायं प्रवृत्तिमत्सर्वजगत्त्नयेपि।।
6. अथर्ववेद, 11.3.15.
7. अर्थववेद, 15.1.
8. पाणिनी, 4.3.130, दण्डमाणवान्तेवासिषु।
9. आश्व, गृ.सू. 3.8.11—14.
10. बोल, पृ. 105—6.
11. हारित स्मृति, 3.15,
यो ब्रह्मचारी विधिना समाहितश्च रेत् पृथिव्यां गुरुसेवने रतः।
संप्राप्य विद्यामतिदुर्लभां शिवां फलच्च तस्याः सुलभं तु विन्दति।।
12. बा.स., 26.2, यथेमांवच कल्याणीभाव यानि जनेभ्यः। ब्रह्मराजन्याभ्यां शूद्राय। चार्याच च स्वाय चारणाय च।।
13. गौ. ध. सू., 12.5
14. जैमिनि., 6.1.15.38
15. वहीं, 12.60.30, तस्माच्छूद्रः पाकयज्ञैर्यजेताव्रतवान् स्वयम्। पूर्णपात्रमयीमाहुः पाकयज्ञस्य दक्षिणाम्।।
16. वहीं, 13.10.16
17. मनु. 2.80, न शूद्राय मतिं दद्यान्नोचिछष्टं न हविष्कृतम्। न चास्योपदिशेद्धर्म न चास्य व्रतमादिशेत्।।
18. ग्यारहवीं सदी का भारत, पृ. सं. 119.
19. अपरार्क, पृ. 23.
20. ग्यारहवीं सदी का भारत, पृ. सं.168
21. छा.उ. 4.10.14, बृ.उ., 6.3.12, एतमुहैव सत्यकामोजाबालोऽन्तेवासिभ्यः उक्तवोवाचापि।
22. छा.उ., 4.4.2, सा हैनमुवाच नाहमतेतद् वेद तात। यद्गोत्रस्त्वमासि। ब्रहंह चरन्ती परिरिणी यौवने त्वामलभे। साहमेतन्न वेद यदगोतस्वमसि। जबाला तु नामाहमस्मि। सत्यकामो नाम त्वमसि। स सत्यकामएवं जाबालो बु वीथा इति।
23. मज्झिम निकाय, 2, पृ. 103.
24. महावग्ग, 1.50
25. वाटर्स, 2, पृ. 164.
26. एपि.इं., 20,43, यस्यामम्बुधरावलेहि शिखरश्रेणी विहारावली।मालवोर्ध्वविराजिनी विरिचिता धात्रा मनोज्ञाभुवः।
नालन्दा हसतीव सर्वनगरीः शुभ्राभ्रगौरस्फुट च्यर्त्यांशु प्रकरोस्सदागमकला विख्यात विद्वज्जना।
27. वाटर्स, 2, पृ. 180
28. वहीं,2, पृ. 165
29. वहीं।
30. वहीं
31. वहीं
32. वहीं
33. वहीं,1, पृ. 160.

❖◆❖